बदहाल यूरोप को राहत पैकेज

जैक इविंग

© The New York Times 2019

यूरोपीय केंद्रीय बैंक ने हाल ही में प्रोत्साहन पैकेज को जिस अप्रत्याशित तरीके से मंजूरी दी है, उसी से यूरोप के आर्थिक संकट की भीषणता का पता चलता है। ज्यादा खतरनाक यह है कि ट्रंप के व्यापार युद्ध और चीन की खराब आर्थिक स्थिति को देखते हुए पूरी दुनिया के ही सुस्ती की चपेट में आने की आशंका व्यक्त की जा रही है।

कुछ ही महीने हुए, जब यूरोपीय केंद्रीय बैंक ने वित्तीय संकट को देखते हुए जारी किए जाने वाले एक प्रोत्साहन पैकेज पर रोक लगा दी थी। लेकिन विगत बृहस्पतिवार को उसने अप्रत्याशित रूप से अपना रवैया बदला और उस प्रोत्साहन पैकेज के एक बड़े हिस्से को मंजूरी देते हुए मंदी के बढ़ते खतरे का एहसास दिलाया। केंद्रीय बैंक का तेजी से अपना रुख बदलना और आत्मविश्वास का चिंता में परिणत होना वैश्विक अर्थव्यवस्था की व्यापक कमजोरी को ही प्रतिबिंबित करता है। चीन में सुस्ती की, जिसे अमेरिका के साथ व्यापार युद्ध के कारण और गति मिली है, अनुगूंज दुनिया भर में सुनाई पड़ रही है, जिसने यूरोप और दूसरी जगहों में भी विकास पर असर डाला है। अमेरिका यूरोप का सबसे बड़ा कारोबारी सहयोगी है, जबकि उसकी कारों, फार्मास्यूटिकल्स और तैयार सामान के लिए चीन भी उतना ही महत्वपूर्ण बाजार है। औद्योगिक पावर हाउस जर्मनी ताजा तिमाही में बड़ी मुश्किल से मंदी से निकल पाया, क्योंकि उसकी अर्थव्यवस्था एक ओर उसके इस्पात पर अमेरिका द्वारा लगाए गए शुल्क से प्रभावित हुई, तो दूसरी तरफ उसके मशीनों के औजार और वॉक्सवैगन कारों की चीन में मांग अब नहीं रह गई है।

यूरोप की अपनी हालत चूंकि मजबूत नहीं है, ऐसे में, वैश्विक ताकतों के आगे उसकी स्थिति दयनीय है। यूरोपीय संघ से ब्रिटेन के निकलने की अनिश्चितता का असर ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पर पड़ा है, तो इटली और स्पेन अपनी राजनीतिक परेशानियों से हिले हुए हैं। वैश्विक स्तर पर व्याप्त इस उथल-पुथल में इतनी ताकत तो है ही कि वह उस अमेरिका पर असर डाल सके, दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाओं में जिसका प्रदर्शन सबसे अच्छा है। इतिहास गवाह है कि अमेरिका यूरोप की आर्थिक बदहाली से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि दोनों में गहरे कारोबारी रिश्ते हैं। जबकि चीन की सुस्ती ने खतरा और बढ़ा दिया है।

इस पृष्ठभूमि में यूरोपीय केंद्रीय बैंक की गवर्निंग काउंसिल ने पिछले बृहस्पतिवार को सर्वसम्मति से प्रोत्साहन पैकेज को मंजूरी दी, ताकि उधारी को प्रोत्साहन मिले। यह कदम इटली जैसी कमजोर अर्थव्यवस्थाओं वाले देश के बैंकों के लिए मददगार साबित होगा,

जिन्हें पूंजी बाजार से मुनासिब दर पर कर्ज लेने में मुश्किलें आ रही हैं। प्रोत्साहन पैकेज का इस्तेमाल इससे पहले 2008 में मंदी के असर से यूरो जोन को ध्वस्त होने से बचाने के लिए किया गया था। इस पैकेज के तहत व्यावसायिक बैंक केंद्रीय बैंक से बगैर ब्याज के उधार ले सकते हैं, लेकिन उन्हें वायदा करना होता है कि यह पैसा वे व्यापार-उद्योग या उपभोक्ताओं को कर्ज देंगे।

यूरोपीय केंद्रीय बैंक के अध्यक्ष मारियो द्राघी के मुताबिक, यूरोप की आर्थिक बदहाली के लिए व्हाइट हाउस की नीतियां जिम्मेदार हैं। अलबत्ता वह स्वीकारते हैं कि इसके बावजूद उन्होंने मंदी की आशंका नहीं की थी। यूरोप के लिए पिछला दशक सचमुच बहुत कठिन था। लेकिन पिछले साल से तो स्थिति बहुत ही खराब हो गई थी। यह देखते हुए द्राघी ने विगत दिसंबर में बांड खरीदने का कार्यक्रम रोक दिया। जबकि ब्याज दर बढ़ाने की पृष्ठभूमि केंद्रीय बैंक ने उससे पहले सितंबर में ही तैयार कर ली थी। ये कदम बैंक के आत्मविश्वास की ही तस्दीक करते थे कि दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाएं अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के व्यापार युद्ध को ठेंगा दिखाते हुए अपनी आर्थिक मजबूती का सिलसिला बरकरार रखेंगी। लेकिन कुछ ही महीने में स्थिति बेहद खराब हो गई। इटली में मंदी आ गई और जर्मनी में भी हालत करीब-करीब वैसी ही हो गई। यूरोपीय संघ से ब्रिटेन के बाहर निकलने की कोशिश तो और भी कठिन साबित हुई और इसने जो गतिरोध पैदा किया, वह आशंका से भी अधिक था।

ऐसे में, मौसम का बदलता मिजाज भी मानो यूरोप के खिलाफ साजिश रच रहा था। अस्वाभाविक रूप से गर्म और सूखे मौसम के कारण राइन नदी का जलस्तर इतना नीचे चला गया कि उस पर बड़े नाव और क्रूज का चलना असंभव हो गया, जिससे रसायनों और ईंधन की आपूर्ति बाधित हुई और इनकी कीमत बढ़ गई। यूरोप की यह बदहाली अमेरिकी शेयर बाजार को बुरी तरह प्रभावित कर सकती है।

हालांकि इन सबके बावजूद पिछले बृहस्पतिवार को यूरोपीय केंद्रीय बैंक ने जिस तरह प्रोत्साहन पैकेज की घोषणा की, वह अप्रत्याशित थी। इसकी एक वजह बैंक के अपने अर्थशास्त्रियों की आशंकित करने वाली राय भी थी। कुछ महीने पहले ये अर्थशास्त्री इस साल यूरो जोन की आर्थिक विकास दर 1.7 फीसदी आंक रहे थे, पर अब वे मानते हैं कि यह दर 1.1 प्रतिशत रह सकती है। यही कारण है कि गवर्निंग काउंसिल के सभी सदस्य प्रोत्साहन पैकेज जारी करने के मामले में एकमत थे। जबकि ऐसा अमूमन होता नहीं है। इससे पहले संकट के समय गवर्निंग काउंसिल में, जिसमें यूरो जोन में शामिल सभी 19 देशों के केंद्रीय बैंकों के अधिकारी शामिल होते हैं, ज्यादातर मुद्दों पर अलग-अलग विचार सामने आते थे। हालांकि यह पैकेज जारी करने के बाद यूरोपीय केंद्रीय बैंक अब फूंक-फूंककर कदम उठाएगा।

रेणु के गांव में अब बैलगाड़ी नहीं दिखती

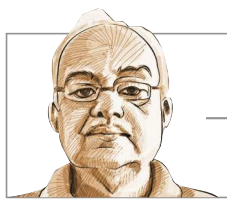

यादवेंद्र
साहित्यकार

पटना के समाजविज्ञानी मित्र श्रीकांत ने जैसे ही पूर्णिया चलने का प्रस्ताव रखा, मैंने हामी भर दी। फणीश्वर नाथ रेणु की रचनाओं की माटी, नदी और पेड़ पौधे छूने देखने की पुरानी इच्छा मुझमें जाग गई।

युवावस्था में जिस लेखक के कथा संकलन ने मेरे मन पर अमिट छाप छोड़ी थी, वह रेणु की *ठुमरी* था। घर में प्रेमचंद के *मानसरोवर* के आठों खंड थे। अम्मा की लाइब्रेरी में रवींद्रनाथ, शरतचंद्र, बंकिम चंद्र और बिमल मित्र सरीखे बड़े लेखक भी थे, जो ज्ञान विस्तार के नए द्वार तो खोलते थे, पर खिलंदड़ेपन के साथ गुदगुदी कम कर पाते थे। मेरा किशोर मन सिनेमा जैसी शब्दावली ढूंढ रहा था, जिसमें हर पल कहीं कुछ नया होता रहे। रेणु से उन्हीं दिनों पाठक के रूप में मुलाकात हुई, सो उनकी दुनिया में प्रवेश पाते ही मन खिल उठा। पूर्णिया-अररिया जाने का सबब बनते ही जिस बात ने मेरे मन के अंदर सबसे ज्यादा जोर मारा, वह रेणु के गांव जाने का स्वर्णिम अवसर था। दरभंगा से आगे निकलने पर राष्ट्रीय राजमार्ग के दोनों ओर मीलों दूर तक पकते धान के खेत, पोखर, बंसवाड़ी और कोसी नदी और उसके कछार और तटबंध दिख रहे थे। पर गांव बहुत कम और आबादी विरल। गांवों में जो घर दीखते थे, उनमें बहुतायत फूस और बांस के बने हुए थे, पक्के मकान बहुत कम। चौड़े राजमार्ग के किनारे एक जगह हमें 'रेणु ग्राम' लिखा दिखा, तो हम आह्लादित होकर अंदर की सड़क पर उतर आए। पर वह सड़क नाम को डामर वाली पक्की सड़क थी, बड़े-बड़े गड्ढे इतनी संख्या में थे कि सारी खुशी मिनट भर में काफूर हो गई। आवाजाही कम थी, जो थे भी, उनमें मोटरबाइक का बड़ा हिस्सा था। हीरामन की बैलगाड़ी तो अब स्मृतियों में रह गई हैं। *ठुमरी* की कहानियों में कभी मोटरबाइक या कार की चर्चा नहीं मिली। पर मेरा जिद्दी मन था कि रेणु के गांव के नाम पर *ठेस, तीसरी कसम, रसप्रिया, लाल पान की बेगम, पंचलाइट* और *सिरीपंचमी* के चलते-फिरते किरदारों के घर और शक्लें ढूंढ रहा था।

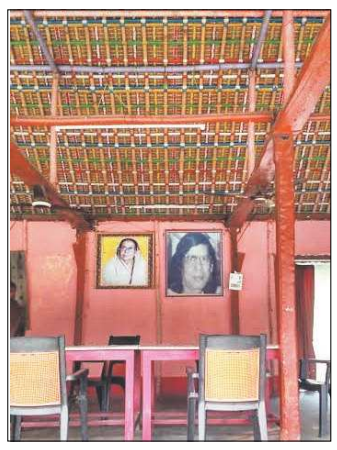

अमर शब्द शिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी रचनाओं में गुलाबबाग के जिस मेले को अमर कर दिया है, वह मेला कब का खत्म हो चुका है। ऐसे ही बैलगाड़ियों की जगह मोटर बाइक ने ले ली है।

बीच में एक छोटा-सा बाजार पड़ा और वहां भी हमें रेणु द्वार दिखा। धान के खेतों के बाद मूंगफली और आलू के हरे-भरे खेतों और खूब घुमावदार रास्तों से होते हुए हम औराही हिंगना गांव में पहुंचे। वहां जब हमारे ड्राइवर ने विधायक जी का घर पूछा (रेणु जी के बड़े बेटे पराग पद्मराय वेणु विधायक रह चुके हैं) तो मुझे गुस्सा आया-रेणु जी के नाम से दुनिया में मशहूर गांव में उनका घर क्यों नहीं पूछा?

घुमावदार रास्तों और बांस के सघन झुंडों के बीच बसे ज्यादातर कच्चे घरों वाले गांव के बीचोबीच हमें गुलाबी रंग का एक नया बना दुमंजिला दिखाई दिया। यह राज्य सरकार द्वारा निर्मित 'रेणु स्मृति भवन' है, जो दो साल पहले से बनकर ताला बंद पड़ा है। रेणु जी के बेटे दक्षिणेश्वर पप्पू ने बताया कि पिछले कुछ वर्षों में मुख्यमंत्री पांच बार गांव में आए, पर भवन आबाद नहीं हुआ। रेणु जी के घर पहुंचते ही हमें सुघड़ कलात्मकता के दर्शन हुए। आंगन में मूंगफली के पौधे और बकरियों की सहज उपस्थिति बहुत नॉस्टैल्जिक थी। जिस प्रशस्त आंगन में *तीसरी कसम* फिल्म की शुरुआत में बुहारते हुए रेणु जी की पत्नी दिखाई देती हैं, हम उसे पार करके जब रेणु जी की कोठरी में गए, तो तन-मन सिहर उठा। कितने आख्यान और चरित्र यहां बैठकर गढ़े गए हैं। भारत ही क्या, नेपाल की राजनीति में क्रांतिकारी बदलाव करने वाली कितनी रणनीतियां बनाई गई हैं इस कोठरी में। दीवार पर टंगे आठ-दस फ्रेम में रेणु और उनकी दोनों जीवन संगिनियां थीं।

रेणु जी के परिजनों से बात करते हुए मैंने पूछा कि उनकी रचनाओं में यह इलाका जिस तरह से चित्रित हुआ है, उसमें और अब में क्या फर्क आया है, तो उन्होंने बताया कि उनकी कहानियों में बार-बार मेलों का जिक्र होता है। गुलाब बाग का मेला इस अंचल का बहुत मशहूर मेला हुआ करता था, पर उसे उजड़े जमाना हो गया। रेणु की कहानियों में बैलगाड़ी बार-बार आती है। पर इस यात्रा में बैलगाड़ी पर नजर बिल्कुल नहीं पड़ी। हां, बांस और मूंज प्रचुर मात्रा में अब भी उपलब्ध हैं। पटसन की खेती वैसे ही उजड़ गई है, जैसे नील की खेती। वैसे पटसन की डंठल के गुच्छों के ऊपर गोबर लपेट कर ईंधन के ढेर हर जगह दिखाई दिए। लोगों ने बताया कि पटसन की जगह अब मूंगफली यहां की मुख्य नकदी फसल हो गई है।

आधुनिक औद्योगिक विकास से अछूता यह अंचल अब भी बेहद हरा-भरा है। कोसी की बाढ़ से कमोबेश मुक्ति मिल गई है, पर जमीन में पर्याप्त नमी रहती है। कोसी के अलावा कजरी, परमार सरीखी नदियां हरियाली बनाए रखती हैं। रेणु जी अपनी कहानियों में इस हरे-भरे अंचल में रहने वाली किसिम-किसिम की चिड़ियों-कूखनी, कोयल, पंडुक, महोक आदि की बात करते हैं। कभी यह इलाका बड़े जमींदारों के आतंक का केंद्र रहा था, पर गरीब किसानों के जीवन में अत्याचार था, तो मेले, नौटंकी, बिदापत, रसप्रिया, बिरहा, चांचर, लगनी, बारहमासा, निरगुन आदि लोक संगीत भी कम नहीं थे। अब वह सब खत्म हो चुका है।

मार्टिन लूथर किंग और एक पिछड़ा भारतीय

अमेरिकी नागरिक अधिकार कार्यकर्ता को पत्र लिखने वाले एम.के. अच्युतन ने वंचित परिवार से निकलकर इंजीनियरिंग की पढ़ाई की, निश्चित रूप से उन्हें स्कूल, कॉलेज और कार्य स्थल पर उच्च वर्ग से भेदभाव का सामना करना पड़ा होगा।

रामचंद्र गुहा
जाने-माने इतिहासकार

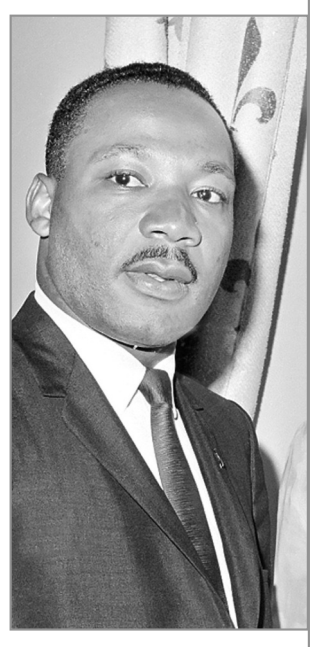

फरवरी, 1959 में डॉ. मार्टिन लूथर किंग और उनकी पत्नी कोरेट्टा तीन हफ्ते के प्रवास पर भारत आए थे। अमेरिकी सिविल राइट नेता की गांधी की भूमि की इस तीर्थ यात्रा के बारे में काफी कुछ लिखा गया है। हालांकि बोस्टन यूनिवर्सिटी में डॉ. किंग के दस्तावेजों पर काम करने के दौरान मुझे एक दिलचस्प फुटनोट मिला, जिस पर बात करना जरूरी लग रहा है। डॉ किंग और उनकी भारत यात्रा के बारे में जिन लोगों ने पढ़ा उनमें एक सज्जन एम.के. अच्युतन भी शामिल थे। वह मूलतः तमिलनाडु के थे और उस समय ऑल इंडिया रेडियो के कलकत्ता स्टेशन पर तकनीकी सहायक के रूप में काम कर रहे थे। अच्युतन ने 28 अप्रैल, 1959 को डॉ किंग के मोंटगोमेरी, अलबामा स्थित घर के पते पर एक पत्र भेजा। अच्युतन ने लिखा कि वह 28 वर्ष के हैं और मद्रास यूनिवर्सिटी से टेलीकम्यूनिकेशंस इंजीनियरिंग में स्नातक हैं। उन्होंने डॉ. किंग को लिखा, 'मैं अमेरिका आने को उत्सुक हूं, ताकि आगे की पढ़ाई या प्रशिक्षण हासिल कर सकूं और मैं इसे हकीकत में बदलने के लिए अपने स्तर पर सारे प्रयास कर रहा हूं। वह अमेरिका की कई यूनिवर्सिटी को इससे पहले लिख चुके थे, लेकिन उनके भाग्य ने साथ नहीं दिया, इसलिए उन्होंने डॉ. किंग से सीधे अपील करने का फैसला किया।

अच्युतन ने डॉ. किंग को अपनी निजी पृष्ठभूमि की भी जानकारी दी। उन्होंने लिखा, 'कई अर्थों में मैं अत्यंत वंचित हूं, क्योंकि मेरा जन्म भारत के सर्वाधिक पिछड़े समुदायों में से एक निचली जाति के अत्यंत गरीब परिवार में हुआ है।' इसके बाद अच्युतन ने लिखा, 'मेरे समुदाय में प्राथमिक कक्षा से आगे की पढ़ाई बहुत दुर्लभ है और इंजीनियरिंग स्नातक तक की पढ़ाई मैं इसलिए कर सका, क्योंकि मेरा अकादमिक रिकॉर्ड बहुत अच्छा रहा है और मुझे मद्रास की राज्य सरकार के हरिजन कल्याण विभाग की छात्रवृत्ति मिली थी, ताकि मैं फीस और अन्य खर्च वहन कर सकूं और इंजीनियरिंग कॉलेज में मेरा दाखिला स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय सरकार द्वारा शैक्षणिक संस्थाओं में पिछड़े वर्गों के लिए की गई आरक्षण की व्यवस्था के कारण हो सका...।'

भारत में पढ़ाई करने के लिए अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए आरक्षण था, मगर जो भारत से बाहर जाकर पढ़ाई करना चाहते थे, उनके लिए यह व्यवस्था नहीं थी। इसलिए अच्युतन ने लिखा, 'यों तो भारत सरकार हर साल पढ़ाई करने के लिए कुछ लोगों को विदेश भेजती है, लेकिन इसकी चयन प्रक्रिया में पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं है, इसलिए इससे संबंधित छात्रवृत्तियां सामान्य तौर पर सामाजिक और आर्थिक रूप से उच्च वर्ग के लोगों को ही मिलती हैं।'

अच्युतन ने अनेक अमेरिकी यूनिवर्सिटी को लिखकर छात्रवृत्तियां और अन्य तरह की वित्तीय मदद के बारे में जानकारियां मांगीं, लेकिन उन्हें उनसे या तो 'बहुत रूखा-सा जवाब मिला या फिर कोई जवाब ही नहीं मिला'। उन्होंने रेखांकित किया, ठीक इसी समय जो (उच्च जाति के भारतीय) लोग पहले से ही अमेरिका में थे, उन्होंने आसानी से अपने रिश्तेदारों या करीबी दोस्तों को अमेरिका बुलवा लिया और उनके लिए आर्थिक मदद भी हासिल कर ली, यहां तक कि उन्हें फॉर्म वगैरह लेने में मदद भी की।

अच्युतन की यह शिकायत एकदम वाजिब थी। सरकारी फंड से पढ़ाई के लिए विदेश भेजे जाने वाले तकरीबन सारे भारतीय उच्च जातियों से थे; और उच्च जातियों के पास ही सांस्कृतिक वर्चस्व और पारिवारिक संपर्क था, जिसके कारण वे अपनी निजी क्षमता से पढ़ाई करने के लिए विदेश जा सकते थे। अपनी पृष्ठभूमि के ही कारण उन्होंने डॉ. किंग से मदद मांगी ताकि वे यूनिवर्सिटी से कह सकें कि वे उनके लिए जरूरी फॉर्म भेजें।

अच्युतन ने डॉ. किंग को लिखे इस पत्र का समापन इस तरह से किया : 'यह पहला मौका है, जब मैं अमेरिका को निजी पत्र लिख रहा हूं और मुझे विश्वास है कि स्वाभाविक कारणों से आप मेरे प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखेंगे, इसलिए मैं आपको लिखने के लिए प्रेरित हुआ...। आपका शीघ्र जवाब मिल सका तो, मैं आपका आभारी रहूंगा। एक बार फिर मैं आपसे क्षमा चाहता हूं, क्योंकि मैंने आपको इस पत्र के माध्यम से कष्ट दिया है।'

28 अप्रैल, 1959 को कलकत्ता से छोड़े गए इस पत्र को मई के पहले हफ्ते में मोंटगोमेरी पहुंच जाना चाहिए था। हालांकि डॉ. किंग का जवाब (जिसकी एक प्रति बोस्टन यूनिवर्सिटी के आर्काइव में रखी है) दो महीने बाद 14 जुलाई को ही भेजा जा सका था। विलंब से जवाब भेजने के लिए उन्होंने क्षमा याचना भी की। उनके मुताबिक यह विलंब इसलिए हुआ क्योंकि वह शहर से बाहर थे और जब लौटे तो चिट्ठियों का अंबार लग गया था।

डॉ. किंग ने अच्युतन को लिखा, मैंने आपका पत्र गहरी चिंता के साथ पढ़ा। आपकी परेशानी वास्तविक है और मैं उम्मीद करता हूं कि इसे सुलझाया जा सकता है। आपकी दृढ़ता और सही समझ के लिए आपकी प्रशंसा की जानी चाहिए। डॉ. किंग ने उन्हें बताया कि वह अकादमिक क्षेत्र से नहीं हैं और यूनिवर्सिटी के कामकाज से उनका सीधा संपर्क नहीं है। इसके बावजूद वह उनके आग्रह से इतना भावुक हुए कि उन्होंने लिखा, 'आपकी परेशानी के बारे में मैं कॉलेज के कुछ ऐसे प्रेसिडेंट्स से बात करूंगा जिन्हें मैं निजी तौर पर जानता हूं। चूंकि आपकी दिलचस्पी इंजीनियरिंग में है, इसलिए हॉवर्ड यूनिवर्सिटी आपकी जरूरतों के लिहाज से ठीक रहेगी।' डॉ. किंग ने कहा कि वह इसके डीन को लिखेंगे और उनका जवाब मिलते ही उन्हें सूचित करेंगे।

डॉ किंग ने अपने पत्र का समापन इस तरह से किया : 'एक बार फिर, मैं आपकी सकारात्मकता और कुछ हासिल करने के लिए आपके समर्पण से प्रभावित हूं। मैं आपके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूं।'

एक भुला दिए गए भारतीय और एक सुप्रसिद्ध अमेरिकी के बीच हुआ यह पत्र व्यवहार भावुक कर देने वाला है। इस तरह का पत्र भेजना साहस का काम था, लेकिन एम.के. अच्युतन ने तो अपनी सारी जिंदगी ऐसे साहस का परिचय दिया, उन्होंने वंचित परिवार से निकलकर इंजीनियरिंग की पढ़ाई की, निश्चित रूप से उन्हें स्कूल, कॉलेज और कार्य स्थल पर उच्च वर्ग से भेदभाव का भी सामना करना पड़ा होगा। डॉ. किंग का पत्र भी काफी गरिमापूर्ण और विनम्र था।

दोनों के बीच हुए इस व्यवहार का श्रेय इन दोनों को ही जाता है। लेकिन उस अनजाने शख्स का आखिर क्या हुआ? डॉ. किंग के 1959 से 1968 के दौरान किए गए पत्र व्यवहार और उनके अन्य दस्तावेज सुरक्षित हैं। लेकिन मैं यह जानने में असमर्थ रहा कि आखिर एम.के. अच्युतन के साथ फिर क्या हुआ। यही कह सकते हैं कि उन्हें उनके साहस और प्रतिभा का फल जरूर मिला होगा, जिसके वह हकदार थे।

बदलते कथानक वाला चुनाव

राफेल पर ताजा घटनाक्रम से सियासी कहानी बदलती दिख रही है। लेकिन यदि जैश ने फिर से हमला किया और चुनाव में व्यस्त मोदी सरकार ने फिर से करारा जवाब दिया, तो कहानी फिर बदल जाएगी।

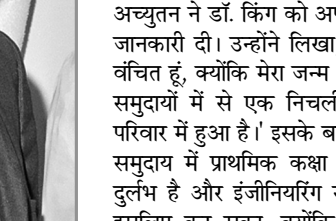

विजय विद्रोही

चार सवाल हैं। क्या उग्र राष्ट्रवाद ही लोकसभा चुनाव 2019 का नया कथानक है? क्या यह कथानक अप्रैल के पहले हफ्ते में होने वाले पहले चरण के चुनाव से पहले बदल सकता है? क्या यह कथानक भाजपा को चुनाव जिताने के लिए काफी है? अगर कथानक राष्ट्रवाद से बदलकर किसानों का दर्द और नौजवानों का रोजगार हो गया, तो क्या भाजपा चुनाव हार जाएगी? इस सवाल को थोड़ा बदलकर पूछा जा सकता है कि अगर कथानक किसान नौजवान हो गया, तो क्या कांग्रेस चुनाव जीत जाएगी? (यहां कांग्रेस जीते या संयुक्त विपक्ष)।

भाजपा ने अपनी तरफ से नया कथानक चुनावी बाजार में फेंका है। वह है 'उग्र राष्ट्रवाद'। भाजपा खुद को राष्ट्र, राष्ट्र हितयुक्त, भ्रष्टाचार मुक्त, परिवारवाद मुक्त पार्टी के रूप में प्रस्तुत कर रही है। वह इस बात पर जोर दे रही है कि पाकिस्तान पर उसके हवाई हमले पर सवाल उठाने वाले देशद्रोही हैं। भाजपा की नजर में कथानक है, पाकिस्तान के घर में उसे मारना और मोदी सरकार की विभिन्न योजनाओं के 22 करोड़ लाभार्थी। उसे लगता है कि एक तिहाई सांसदों के टिकट काट दो, कुछ जगह फिल्मी सितारों से लेकर क्रिकेट सितारों को उतार दो और बाकी का काम मोदी के भाषण-अमित शाह के बूथ के यूथ कर ही देंगे। लेकिन यह क्या इतना आसान है। इसके लिए हमें दो उदाहरण देखने होंगे।

पुलवामा में सीआरपीएफ के काफिले पर हमले के बारहवें दिन पाकिस्तान के बालाकोट में भारतीय वायुसेना के पराक्रम के बाद सब कुछ भाजपा के पक्ष में दिख रहा था। कांग्रेस इस कदर पस्त थी कि उसने चुनावी रैली छोड़ पत्रकार वार्ता करना तक बंद कर दिया था। उधर भाजपा के अमित शाह से लेकर नरेंद्र मोदी चुनावी रैलियां भी कर रहे थे और पाकिस्तान के खिलाफ कभी तरजीही देश का दर्जा हटाने तो कभी पानी बंद कर देने जैसे फैसले कर रहे थे। लेकिन दो दिन बाद विंग कमांडर अभिनंदन जब पाकिस्तान की सेना के कब्जे में आए और वीडियो जारी हुआ, तो भाजपा समर्थकों को सांप सूंघ गया। राष्ट्रवाद का उन्माद फैलाने वालों के हाथ पैर फूले। यहां तक न्यूज चैनलों के एंकर भी मध्यम स्वर में बोलने लगे। दो दिन बाद ही अभिनंदन की सुरक्षित रिहाई के साथ ही कथानक फिर बदला। भाजपा ने हर जगह बात फैलाई कि मोदी जी के कारण पाकिस्तान डर गया और इमरान खान को खुद अभिनंदन की रिहाई की घोषणा करनी पड़ी। लेकिन भाजपा भी जान गई थी कि अगर पाकिस्तान के साथ तनातनी इसी तरह जारी रही और अभिनंदन जैसे एक-दो हादसे और हो गए तो कहानी बदल सकती है।

कहानी कैसे बदलती है। इसकी दूसरी मिसाल सुप्रीम कोर्ट में राफेल की सुनवाई थी। भारत सरकार की तरफ से अटॉर्नी जनरल ने दस्तावेज रक्षा मंत्रालय से

चोरी होने की बात कही, तो सोशल मीडिया में हल्ला मच गया। लस्त-पस्त कांग्रेस को मानो संजीवनी मिल गई और एक बार फिर राफेल-राफेल शुरू हो गया। अदालत में एक बयान से कहानी बदल गई। लेकिन यदि जैश ने फिर से हमला किया और चुनाव में व्यस्त मोदी सरकार ने फिर से करारा जवाब दिया, तो कहानी मोदी के पक्ष में भी जा सकती है।

हालांकि एक टीवी चैनल का पुलवामा और बालाकोट के बाद का सर्वे मोदी सरकार के लिए चिंता का विषय है। सर्वे कहता है कि बेरोजगारी अब भी सबसे बड़ा मुद्दा है। 36 फीसद लोग इसे भी सबसे बड़ा मुद्दा बता रहे हैं। आतंकवाद 23 फीसद लोगों के लिए मुद्दा है और किसानों की परेशानियां 22 फीसद को परेशान किए है। यानी आज भी 58 फीसद जनता किसान और नौजवान की बात कर रही है। हालांकि भाजपा के लिए राहत की बात है कि मोदी की खुद की लोकप्रियता में इजाफा हुआ है। एक अन्य सर्वे बताता है कि इस साल जनवरी में मोदी की लोकप्रियता करीब 51 फीसद थी और राहुल गांधी 38 फीसद के साथ टक्कर दे रहे थे, लेकिन पुलवामा बालाकोट के बाद मोदी की लोकप्रियता 64 फीसद तक पहुंच गई और राहुल की दस फीसद तक गिर गई।

विपक्ष या कहें कांग्रेस तो वह किसानों की तकलीफों और बेरोजगारी के अपने कथानक को उग्र तरीके से सामने ला सकती है। किसानों की आय 2022 तक दोगुना करने का वायदा जुमले से कम नहीं। किसानों को 17 रुपये रोज देकर उनके साथ धोखा किया जा रहा है। किसानों की आय कुछ सालों में और ज्यादा गिरी है, लागत का डेढ़ गुना किसी को नहीं मिल रहा है, उल्टे किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य से भी पंद्रह-बीस फीसद कम में फसल बेचनी पड़ रही है। ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं, जिन्हें कांग्रेस जोरदार तरीके से उठाकर मोदी सरकार की घेरेबंदी कर सकती है।

इसके बावजूद विपक्ष सीट-दर-सीट ही भाजपा को सामूहिक रूप से टक्कर दे सकता है। अगर भाजपा बिहार में पांच सीटें और महाराष्ट्र में भी कुछ सीटों का त्याग कर सकती है, तो कांग्रेस दिल्ली में आम आदमी पार्टी से समझौता क्यों नहीं कर सकती! वह भी तब जब वह कर्नाटक में बीच का रास्ता निकाल सकती है, तमिलनाडु में डीएमके की बात मान सकती है, तो दिल्ली में क्या अड़चन है। उत्तर प्रदेश में भी सपा-बसपा कांग्रेस को छह-सात सीटें दे सकते थे, लेकिन उसने प्रियंका गांधी को मैदान में उतारा है, जिनकी मौजूदगी से कुछ सीटों में त्रिकोणा मुकाबला हो सकता है, जिसका सीधा फायदा भाजपा को मिलेगा यह बताने की जरूरत नहीं है।

कांग्रेस को नया दौर लाना है, तो नए दौर का गाना गाना ही पड़ेगा... *साथी हाथ बढ़ाना*। तभी वह नामुमकिन को मुमकिन बना पाएगी।